गद्य खंड

उचित प्रकार की शिक्षा का अर्थ है प्रज्ञा को जागृत करना तथा समन्वित जीवन का पोषण करना और केवल ऐसी ही शिक्षा एक नवीन संस्कृति तथा शांतिमय विश्व की स्थापना कर सकेगी।

जे. कृष्णमूर्ति

- कोई भी पुस्तक कुछ शब्दों का संघात है। शब्दों के समूह ही तो पुस्तक कहलाते हैं। परंतु वे शब्द सजाकर इस प्रकार रखे गए होते हैं कि उनसे हम एक अर्थ पाते रहते हैं। (साहित्य का व्याकरण, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी)

- कलाकार होने के लिए ज़रूरी है कि वह चीज़ों को कस कर पकड़े और अनुभव को स्मृति में, स्मृति को अभिव्यक्ति में, तत्व को रूप में ढाले।

  (कला का प्रयोजन, अर्न्स्ट फिशर)

- कहानी शायद समय की कला है; समय के साथ कहानी अनेक प्रकार की कलाएँ दिखाती है। कभी वर्षों को समेटकर एक क्षण में बाँध लेती है; कभी क्षण को खोलकर वर्षों में फैला देती है; कभी समय के दायरे को तोड़ती है तो कभी टुकड़ों को जोड़कर एक दायरा बनाती है।

  (कहानी और फैंटेसी, नामवर सिंह)

साहित्य वह जादू की लकड़ी है जो पशुओं में, ईंट-पत्थरों में, पेड़-पौधों में भी विश्व की आत्मा का दर्शन करा देती है।

(जीवन में साहित्य का स्थान)

प्रेमचंद

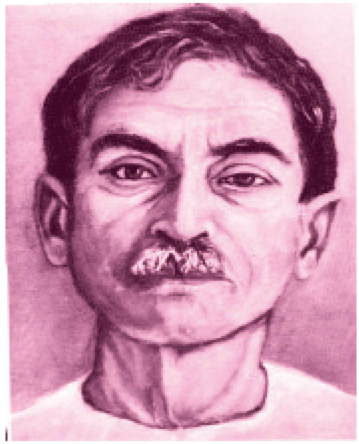

मूल नाम: धनपत राय

जन्म: सन् 1880, लमही गाँव (उ.प्र.)

प्रमुख रचनाएँ: सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, कायाकल्प, गबन, कर्मभूमि, गोदान (*उपन्यास*); सोज़े वतन, मानसरोवर–आठ खंड में, गुप्त धन (*कहानी संग्रह*); कर्बला, संग्राम, प्रेम की देवी (*नाटक*); कुछ विचार, विविध प्रसंग (*निबंध-संग्रह*)

मृत्यु: सन् 1936

प्रेमचंद हिंदी कथा-साहित्य के शिखर पुरुष माने जाते हैं। कथा-साहित्य के इस शिखर पुरुष का बचपन अभावों में बीता। स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद पारिवारिक समस्याओं के कारण जैसे-तैसे बी. ए. तक की पढ़ाई की। अंग्रेज़ी में एम.ए. करना चाहते थे लेकिन जीवनयापन के लिए नौकरी करनी पड़ी। सरकारी नौकरी मिली भी लेकिन महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में सक्रिय होने के कारण त्यागपत्र देना पड़ा। राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ने के बावजूद लेखन कार्य सुचारु रूप से चलता रहा। पत्नी शिवरानी देवी के साथ अंग्रेज़ों के खिलाफ़ आंदोलनों में हिस्सा लेते रहे। उनके जीवन का राजनीतिक संघर्ष उनकी रचनाओं में सामाजिक संघर्ष बनकर सामने आया जिसमें जीवन का यथार्थ और आदर्श दोनों था।

हिंदी साहित्य के इतिहास में कहानी और उपन्यास की विधा के विकास का काल-विभाजन प्रेमचंद को ही केंद्र में रखकर किया जाता रहा है (प्रेमचंद-पूर्व युग, प्रेमचंद युग, प्रेमचंदोत्तर युग)। यह प्रेमचंद के निर्विवाद महत्त्व का एक स्पष्ट प्रमाण है। वस्तुतः प्रेमचंद ही पहले रचनाकार हैं जिन्होंने कहानी और उपन्यास की विधा को कल्पना और रुमानियत के धुँधलके से निकालकर यथार्थ की ठोस ज़मीन पर प्रतिष्ठित किया। यथार्थ की ज़मीन से जुड़कर कहानी किस्सागोई तक सीमित न रहकर पढ़ने-पढ़ाने की परंपरा से भी जुड़ी। इसमें उनकी हिंदुस्तानी (हिंदी-उर्दू मिश्रित) भाषा का विशेष योगदान रहा। उनके यहाँ हिंदुस्तानी भाषा अपने पूरे ठाट-बाट और जातीय स्वरूप के साथ आई है।

उनका आरंभिक कथा-साहित्य कल्पना, संयोग और रुमानियत के ताने-बाने से बुना गया है। लेकिन एक कथाकार के रूप में उन्होंने लगातार विकास किया और ***पंच परमेश्वर*** *जैसी कहानी तथा* ***सेवासदन*** *जैसे उपन्यास के साथ सामाजिक जीवन को कहानी का आधार बनाने वाली यथार्थवादी कला के अग्रदूत के रूप में सामने आए। यथार्थवाद के भीतर भी आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से आलोचनात्मक यथार्थवाद तक की विकास-यात्रा प्रेमचंद ने की।* ***आदर्शोन्मुख यथार्थवाद*** *स्वयं उन्हीं की गढ़ी हुई संज्ञा है। यह कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में किए गए उनके ऐसे रचनात्मक प्रयासों पर लागू होती है जो कटु यथार्थ का चित्रण करते हुए भी समस्याओं और अंतर्विरोधों को अंततः एक आदर्शवादी और मनोवांछित समाधान तक पहुँचा देती है।* ***सेवासदन, प्रेमाश्रम*** *आदि उपन्यास और* ***पंच परमेश्वर, बड़े घर की बेटी, नमक का दारोगा*** *आदि कहानियाँ ऐसी ही हैं। बाद की उनकी रचनाओं में यह आदर्शवादी प्रवृत्ति कम होती गई है और धीरे-धीरे वे ऐसी स्थिति तक पहुँचते हैं जहाँ कठोर वास्तविकता को प्रस्तुत करने में वे किसी तरह का समझौता नहीं करते।* ***गोदान*** *उपन्यास और* ***पूस की रात, कफ़न*** *आदि कहानियाँ इसके सुंदर उदाहरण हैं।*

यहाँ दी गई कहानी **नमक का दारोगा** (प्रथम प्रकाशन 1914 ई.) प्रेमचंद की बहुचर्चित कहानी है जिसे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के एक मुकम्मल उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। कहानी में ही आए हुए एक मुहावरे को लें तो यह **धन के ऊपर धर्म की जीत** की कहानी है। **धन** और **धर्म** को हम क्रमशः सद्वृत्ति और असद्वृत्ति, बुराई और अच्छाई, असत्य और सत्य इत्यादि भी कह सकते हैं। कहानी में इनका प्रतिनिधित्व क्रमशः पंडित अलोपीदीन और मुंशी वंशीधर नामक पात्रों ने किया है। ईमानदार कर्मयोगी मुंशी वंशीधर को खरीदने में असफल रहने के बाद पंडित अलोपीदीन अपने धन की महिमा का उपयोग कर उन्हें नौकरी से मुअत्तल करा देते हैं, लेकिन अंत:सत्य के आगे उनका सिर झुक जाता है। वे सरकारी महकमे से बर्खास्त वंशीधर को बहुत ऊँचे वेतन और भत्ते के साथ अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियुक्त करते हैं और गहरे अपराध-बोध से भरी हुई वाणी में निवेदन करते हैं, **परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारेवाला बेमुरौवत, उद्दंड, किंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे।** कहानी के इस अंतिम प्रसंग से पहले तक की समस्त घटनाएँ प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उस भ्रष्टाचार की व्यापक सामाजिक स्वीकार्यता को अत्यंत साहसिक तरीके से हमारे सामने उजागर करती हैं। ईमानदार व्यक्ति के अभिमन्यु के समान निहत्थे और अकेले पड़ते जाने की यथार्थ तसवीर इस कहानी की बहुत बड़ी खूबी है। किंतु प्रेमचंद इस संदेश पर कहानी को खत्म नहीं करना चाहते क्योंकि उस दौर में वे मानते थे कि ऐसा **यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको चारों तरफ़ बुराई-ही-बुराई नज़र आने लगती है** ('उपन्यास' शीर्षक निबंध से) इसीलिए कहानी का अंत सत्य की जीत के साथ होता है।

नमक का दारोगा

जब नमक का नया विभाग बना और ईश्वर-प्रदत्त वस्तु के व्यवहार करने का निषेध हो गया तो लोग चोरी-छिपे इसका व्यापार करने लगे। अनेक प्रकार के छल-प्रपंचों का सूत्रपात हुआ, कोई घूस से काम निकालता था, कोई चालाकी से। अधिकारियों के पौ-बारह थे। पटवारीगिरी का सर्वसम्मानित पद छोड़-छोड़कर लोग इस विभाग की बरकंदाजी करते थे। इसके दारोगा पद के लिए तो वकीलों का भी जी ललचाता था। यह वह समय था, जब अंग्रेज़ी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फ़ारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसीदां लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरहकथा समाप्त करके मजनू और फ़रहाद के प्रेम-वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्त्व की बातें समझते हुए रोज़गार की खोज में निकले। उनके पिता एक अनुभवी पुरुष थे। समझाने लगे-बेटा! घर की दुर्दशा देख रहे हो। ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। लड़कियाँ हैं, वह घास-फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं। मैं कगारे पर का वृक्ष हो रहा हूँ, न मालूम कब गिर पड़ूँ। अब तुम्हीं घर के मालिक-मुख्तार हो। नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मज़ार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है जो एक दिन दिखाई देता है और घटते-घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी

ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ। इस विषय में विवेक की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य को देखो, उसकी आवश्यकता को देखो और अवसर को देखो, उसके उपरांत जो उचित समझो, करो। गरज़वाले आदमी के साथ कठोरता करने में लाभ ही लाभ है। लेकिन बेगरज़ को दाँव पर पाना ज़रा कठिन है। इन बातों को निगाह में बाँध लो। यह मेरी जन्मभर की कमाई है।

इस उपदेश के बाद पिताजी ने आशीर्वाद दिया। वंशीधर आज्ञाकारी पुत्र थे। ये बातें ध्यान से सुनीं और तब घर से चल खड़े हुए। इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथप्रदर्शक और आत्मावलंबन ही अपना सहायक था। लेकिन अच्छे शकुन से चले थे, जाते ही जाते नमक विभाग के दारोगा पद पर प्रतिष्ठित हो गए। वेतन अच्छा और ऊपरी आय का तो ठिकाना ही न था। वृद्ध मुंशीजी को सुख-संवाद मिला, तो फूले न समाए। महाजन कुछ नरम पड़े, कलवार की आशालता लहलहाई। पड़ोसियों के हृदय में शूल उठने लगे।

जाड़े के दिन थे और रात का समय। नमक के सिपाही, चौकीदार नशे में मस्त थे। मुंशी वंशीधर को यहाँ आए अभी छह महीनों से अधिक न हुए थे, लेकिन इस थोड़े समय में ही उन्होंने अपनी कार्यकुशलता और उत्तम आचार से अफ़सरों को मोहित कर लिया था। अफ़सर लोग उन पर बहुत विश्वास करने लगे। नमक के दफ़्तर से एक मील पूर्व की ओर जमुना बहती थी, उस पर नावों का एक पुल बना हुआ था। दारोगाजी किवाड़ बंद किए मीठी नींद से सो रहे थे। अचानक आँख खुली तो नदी के प्रवाह की जगह गाड़ियों की गड़गड़ाहट तथा मल्लाहों का कोलाहल सुनाई दिया। उठ बैठे। इतनी रात गए गाड़ियाँ क्यों नदी के पार जाती हैं? अवश्य कुछ न कुछ गोलमाल है। तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया। वरदी पहनी, तमंचा जेब में रखा और बात की बात में घोड़ा बढ़ाए हुए पुल पर आ पहुँचे। गाड़ियों की एक लंबी कतार पुल के पार जाती दिखी। डाँटकर पूछा—किसकी गाड़ियाँ हैं?

थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा। आदमियों में कुछ काना-फूसी हुई, तब आगे वाले ने कहा—पंडित अलोपीदीन की!

'कौन पंडित अलोपीदीन?'

'दातागंज के।'

मुंशी वंशीधर चौंके। पंडित अलोपीदीन इस इलाके के सबसे प्रतिष्ठित ज़मींदार थे। लाखों रुपये का लेन-देन करते थे, इधर छोटे से बड़े कौन ऐसे थे, जो उनके ऋणी न हों। व्यापार भी बड़ा लंबा-चौड़ा था। बड़े चलते-पुरज़े आदमी थे। अंगरेज़ अफ़सर उनके इलाके में शिकार खेलने आते और उनके मेहमान होते। बारहों मास सदाव्रत चलता था।

मुंशीजी ने पूछा—गाड़ियाँ कहाँ जाएँगी? उत्तर मिला—कानपुर। लेकिन इस प्रश्न पर कि इनमें क्या है, सन्नाटा छा गया। दारोगा साहब का संदेह और भी बढ़ा। कुछ

देर तक उत्तर की बाट देखकर वह ज़ोर से बोले–क्या तुम सब गूँगे हो गए हो? हम पूछते हैं, इनमें क्या लदा है?

जब इस बार भी कोई उत्तर न मिला तो उन्होंने घोड़े को एक गाड़ी से मिलाकर बोरे को टटोला। भ्रम दूर हो गया। यह नमक के ढेले थे।

पंडित अलोपीदीन अपने सजीले रथ पर सवार, कुछ सोते कुछ जागते चले आते थे। अचानक कई गाड़ीवानों ने घबराए हुए आकर जगाया और बोले–महाराज! दारोगा ने गाड़ियाँ रोक दी हैं और घाट पर खड़े आपको बुलाते हैं।

पंडित अलोपीदीन का लक्ष्मीजी पर अखंड विश्वास था। वह कहा करते थे कि संसार का तो कहना ही क्या, स्वर्ग में भी लक्ष्मी का ही राज्य है। उनका यह कहना यथार्थ ही था। न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं, नचाती हैं। लेटे ही लेटे गर्व से बोले–चलो, हम आते हैं। यह कहकर पंडितजी ने बड़ी निश्िंचतता से पान के बीड़े लगाकर खाए। फिर लिहाफ़ ओढ़े हुए दारोगा के पास आकर बोले–बाबूजी, आशीर्वाद! कहिए, हमसे ऐसा कौन-सा अपराध हुआ कि गाड़ियाँ रोक दी गईं। हम ब्राह्मणों पर तो आपकी कृपा-दृष्टि रहनी चाहिए।

वंशीधर रुखाई से बोले–सरकारी हुक्म!

पंडित अलोपीदीन ने हँसकर कहा–हम सरकारी हुक्म को नहीं जानते और न सरकार को। हमारे सरकार तो आप ही हैं। हमारा और आपका तो घर का मामला है, हम कभी आपसे बाहर हो सकते हैं? आपने व्यर्थ का कष्ट उठाया। यह हो नहीं सकता कि इधर से जाएँ और इस घाट के देवता को भेंट न चढ़ावें। मैं तो आपकी सेवा में स्वयं ही आ रहा था। वंशीधर पर ऐश्वर्य की मोहिनी वंशी का कुछ प्रभाव न पड़ा। ईमानदारी की नयी उमंग थी। कड़ककर बोले–हम उन नमकहरामों में नहीं हैं जो कौड़ियों पर अपना ईमान बेचते फिरते हैं। आप इस समय हिरासत में हैं। आपका कायदे के अनुसार चालान होगा। बस, मुझे अधिक बातों की फ़ुरसत नहीं है। जमादार बदलू सिंह! तुम इन्हें हिरासत में ले चलो, मैं हुक्म देता हूँ।

पंडित अलोपीदीन स्तंभित हो गए। गाड़ीवानों में हलचल मच गई। पंडितजी के जीवन में कदाचित यह पहला ही अवसर था कि पंडितजी को यह ऐसी कठोर बातें सुननी पड़ीं। बदलू सिंह आगे बढ़ा किन्तु रोब के मारे यह साहस न हुआ कि उनका हाथ पकड़ सके। पंडितजी ने धर्म को धन का ऐसा निरादर करते कभी न देखा था। विचार किया यह अभी उद्दंड लड़का है। माया-मोह के जाल में अभी नहीं पड़ा। अल्हड़ है, झिझकता है। बहुत दीन-भाव से बोले–बाबू साहब, ऐसा न कीजिए, हम मिट जाएँगे। इज़्ज़त धूल में मिल जाएगी। हमारा अपमान करने से आपके हाथ क्या आएगा। हम किसी तरह आपसे बाहर थोड़े ही हैं।

वंशीधर ने कठोर स्वर में कहा–हम ऐसी बातें नहीं सुनना चाहते।

अलोपीदीन ने जिस सहारे को चट्टान समझ रखा था, वह पैरों के नीचे से खिसकता हुआ मालूम हुआ। स्वाभिमान और धन ऐश्वर्य को कड़ी चोट लगी। किंतु अभी तक धन की सांख्यिक शक्ति का पूरा भरोसा था। अपने मुख्तार से बोले–लाला जी, एक हज़ार के नोट बाबू साहब को भेंट करो, आप इस समय भूखे सिंह हो रहे हैं।

वंशीधर ने गरम होकर कहा–एक हज़ार नहीं, एक लाख भी मुझे सच्चे मार्ग से नहीं हटा सकते।

धर्म की इस बुद्धिहीन दृढ़ता और देव-दुर्लभ त्याग पर मन बहुत झुँझलाया। अब दोनों शक्तियों में संग्राम होने लगा। धन ने उछल-उछलकर आक्रमण करने शुरू किए। एक से पाँच, पाँच से दस, दस से पंद्रह, और पंद्रह से बीस हज़ार तक नौबत पहुँची, किंतु धर्म अलौकिक वीरता के साथ इस बहुसंख्यक सेना के सम्मुख अकेला पर्वत की भाँति अटल, अविचलित खड़ा था।

अलोपीदीन निराश होकर बोले–अब इससे अधिक मेरा साहस नहीं। आगे आपको अधिकार है।

वंशीधर ने अपने जमादार को ललकारा। बदलू सिंह मन में दारोगाजी को गालियाँ देता हुआ पंडित अलोपीदीन की ओर बढ़ा। पंडित घबराकर दो-तीन कदम

पीछे हट गए। अत्यंत दीनता से बोले—बाबू साहब, ईश्वर के लिए मुझ पर दया कीजिए, मैं पच्चीस हज़ार पर निपटारा करने को तैयार हूँ।

'असंभव बात है।'

'तीस हज़ार पर?'

'किसी तरह भी संभव नहीं?'

'क्या चालीस हज़ार पर भी नहीं?'

'चालीस हज़ार नहीं, चालीस लाख पर भी असंभव है। बदलू सिंह, इस आदमी को अभी हिरासत में ले लो। अब मैं एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।'

धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला। अलोपीदीन ने एक हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को हथकड़ियाँ लिए हुए अपनी तरफ़ आते देखा। चारों ओर निराश और कातर दृष्टि से देखने लगे। इसके बाद एकाएक मूर्छित होकर गिर पड़े।

दुनिया सोती थी, पर दुनिया की जीभ जागती थी। सवेरे देखिए तो बालक-वृद्ध सबके मुँह से यही बात सुनाई देती थी। जिसे देखिए, वही पंडितजी के इस व्यवहार पर टीका-टिप्पणी कर रहा था, निंदा की बौछारें हो रही थीं, मानो संसार से अब पापी का पाप कट गया। पानी को दूध के नाम से बेचनेवाला ग्वाला, कल्पित रोज़नामचे भरनेवाले अधिकारी वर्ग, रेल में बिना टिकट सफ़र करनेवाले बाबू लोग, जाली दस्तावेज़ बनानेवाले सेठ और साहूकार, यह सब-के-सब देवताओं की भाँति गरदनें चला रहे थे। जब दूसरे दिन पंडित अलोपीदीन अभियुक्त होकर कांस्टेबलों के साथ, हाथों में हथकड़ियाँ, हृदय में ग्लानि और क्षोभभरे, लज्जा से गरदन झुकाए अदालत की तरफ़ चले, तो सारे शहर में हलचल मच गई। मेलों में कदाचित् आँखें इतनी व्यग्र न होती होंगी। भीड़ के मारे छत और दीवार में कोई भेद न रहा।

किंतु अदालत में पहुँचने की देर थी। पंडित अलोपीदीन इस अगाध वन के सिंह थे। अधिकारी वर्ग उनके भक्त, अमले उनके सेवक, वकील-मुख्तार उनके आज्ञापालक और अरदली, चपरासी तथा चौकीदार तो उनके बिना माल के गुलाम थे। उन्हें देखते

ही लोग चारों तरफ़ से दौड़े। सभी लोग विस्मित हो रहे थे। इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए। ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करनेवाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था। बड़ी तत्परता से इस आक्रमण को रोकने के निमित्त वकीलों की एक सेना तैयार की गई। न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया। वंशीधर चुपचाप खड़े थे। उनके पास सत्य के सिवा न कोई बल था, न स्पष्ट भाषण के अतिरिक्त कोई शस्त्र। गवाह थे, किंतु लोभ से डाँवाडोल।

यहाँ तक कि मुंशीजी को न्याय भी अपनी ओर से कुछ खिंचा हुआ दीख पड़ता था। वह न्याय का दरबार था, परंतु उसके कर्मचारियों पर पक्षपात का नशा छाया हुआ था। किंतु पक्षपात और न्याय का क्या मेल? जहाँ पक्षपात हो, वहाँ न्याय की कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुकदमा शीघ्र ही समाप्त हो गया। डिप्टी मजिस्ट्रेट ने अपनी तजवीज़ में लिखा, पंडित अलोपीदीन के विरुद्ध दिए गए प्रमाण निर्मूल और भ्रमात्मक हैं। वह एक बड़े भारी आदमी हैं। यह बात कल्पना के बाहर है कि उन्होंने थोड़े लाभ के लिए ऐसा दुस्साहस किया हो। यद्यपि नमक के दारोगा मुंशी वंशीधर का अधिक दोष नहीं है, लेकिन यह बड़े खेद की बात है कि उसकी उद्दंडता और विचारहीनता के कारण एक भलेमानुस को कष्ट झेलना पड़ा। हम प्रसन्न हैं कि वह अपने काम से सजग और सचेत रहता है, किंतु नमक से मुकदमे की बढ़ी हुई नमकहलाली ने उसके विवेक और बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। भविष्य में उसे होशियार रहना चाहिए।

वकीलों ने यह फ़ैसला सुना और उछल पड़े। पंडित अलोपीदीन मुसकुराते हुए बाहर निकले। स्वजन-बांधवों ने रुपयों की लूट की। उदारता का सागर उमड़ पड़ा। उसकी लहरों ने अदालत की नींव तक हिला दी। जब वंशीधर बाहर निकले तो चारों ओर से उनके ऊपर व्यंग्यबाणों की वर्षा होने लगी। चपरासियों ने झुक-झुककर सलाम किए। किंतु इस समय एक-एक कटुवाक्य, एक-एक संकेत उनकी गर्वाग्नि

को प्रज्वलित कर रहा था। कदाचित् इस मुकदमे में सफ़ल होकर वह इस तरह अकड़ते हुए न चलते। आज उन्हें संसार का एक खेदजनक विचित्र अनुभव हुआ। न्याय और विद्वता, लंबी-चौड़ी उपाधियाँ, बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ और ढीले चोंगे एक भी सच्चे आदर के पात्र नहीं हैं।

वंशीधर ने धन से बैर मोल लिया था, उसका मूल्य चुकाना अनिवार्य था। कठिनता से एक सप्ताह बीता होगा कि मुअत्तली का परवाना आ पहुँचा। कार्य-परायणता का दंड मिला। बेचारे भग्न हृदय, शोक और खेद से व्यथित घर को चले। बूढ़े मुंशीजी तो पहले ही से कुड़-बुड़ा रहे थे कि चलते-चलते इस लड़के को समझाया था लेकिन इसने एक न सुनी। सब मनमानी करता है। हम तो कलवार और कसाई के तगादे सहें, बुढ़ापे में भगत बनकर बैठें और वहाँ बस वही सूखी तनख्वाह! हमने भी तो नौकरी की है, और कोई ओहदेदार नहीं थे, लेकिन काम किया, दिल खोलकर किया और आप ईमानदार बनने चले हैं। घर में चाहे अँधेरा हो, मस्जिद में अवश्य दीया जलाएँगे। खेद ऐसी समझ पर! पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया। इसके थोड़े ही दिनों बाद, जब मुंशी वंशीधर इस दुरावस्था में घर पहुँचे और बूढ़े पिताजी ने समाचार सुना तो सिर पीट लिया। बोले–जी चाहता है कि तुम्हारा और अपना सिर फोड़ लूँ। बहुत देर तक पछता-पछताकर हाथ मलते रहे। क्रोध में कुछ कठोर बातें भी कहीं और यदि वंशीधर वहाँ से टल न जाते तो अवश्य ही यह क्रोध विकट रूप धारण करता। वृद्धा माता को भी दुःख हुआ। जगन्नाथ और रामेश्वर यात्रा की कामनाएँ मिट्टी में मिल गईं। पत्नी ने तो कई दिनों तक सीधे मुँह से बात भी नहीं की।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया। संध्या का समय था। बूढ़े मुंशीजी बैठे राम-नाम की माला जप रहे थे। इसी समय उनके द्वार पर सजा हुआ रथ आकर रुका। हरे और गुलाबी परदे, पछहिएँ बैलों की जोड़ी, उनकी गरदनों में नीले धागे, सीगें पीतल से जड़ी हुई। कई नौकर लाठियाँ कंधों पर रखे साथ थे। मुंशीजी अगवानी को दौड़े। देखा तो पंडित अलोपीदीन हैं। झुककर दंडवत की और

लल्लो-चप्पो की बातें करने लगे, हमारा भाग्य उदय हुआ, जो आपके चरण इस द्वार पर आए। आप हमारे पूज्य देवता हैं, आपको कौन-सा मुँह दिखावें, मुँह में तो कालिख लगी हुई है। किंतु क्या करें, लड़का अभागा कपूत है, नहीं तो आपसे क्यों मुँह छिपाना पड़ता? ईश्वर निस्संतान चाहे रखे, पर ऐसी संतान न दे।

अलोपीदीन ने कहा—नहीं भाई साहब, ऐसा न कहिए।

मुंशीजी ने चकित होकर कहा—ऐसी संतान को और क्या कहूँ?

अलोपीदीन ने वात्सल्यपूर्ण स्वर में कहा—कुलतिलक और पुरुषों की कीर्ति उज्ज्वल करने वाले संसार में ऐसे कितने धर्मपरायण मनुष्य हैं जो धर्म पर अपना सब कुछ अर्पण कर सकें?

पंडित अलोपीदीन ने वंशीधर से कहा—दारोगा जी, इसे खुशामद न समझिए, खुशामद करने के लिए मुझे इतना कष्ट उठाने की ज़रूरत न थी। उस रात को आपने अपने अधिकार-बल से मुझे अपनी हिरासत में लिया था किंतु आज मैं स्वेच्छा से आपकी हिरासत में हूँ। मैंने हज़ारों रईस और अमीर देखे, हज़ारों उच्च पदाधिकारियों से काम पड़ा, किंतु मुझे परास्त किया तो आपने। मैंने सबको अपना और अपने धन का गुलाम बनाकर छोड़ दिया। मुझे आज्ञा दीजिए कि आपसे कुछ विनय करूँ।

वंशीधर ने अलोपीदीन को आते देखा तो उठकर सत्कार किया किंतु स्वाभिमान सहित। समझ गए कि यह महाशय मुझे लज्जित करने और जलाने आए हैं। क्षमा-प्रार्थना कर चेष्टा नहीं की, वरन उन्हें अपने पिता की यह ठकुर-सुहाती की बात असह्य-सी प्रतीत हुई। पर पंडितजी की बातें सुनीं तो मन की मैल मिट गई। पंडितजी की ओर उड़ती हुई दृष्टि से देखा। सदभाव झलक रहा था। गर्व ने अब लज्जा के सामने सिर झुका दिया। शरमाते हुए बोले—यह आपकी उदारता है जो ऐसा कहते हैं। मुझसे जो कुछ अविनय हुई है, उसे क्षमा कीजिए। मैं धर्म की बेड़ी में जकड़ा हुआ था, नहीं तो वैसे मैं आपका दास हूँ। जो आज्ञा होगी, वह मेरे सिर-माथे पर।

अलोपीदीन ने विनीत भाव से कहा—नदी तट पर आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकार की थी किंतु आज स्वीकार करनी पड़ेगी।

वंशीधर बोले–मैं किस योग्य हूँ किन्तु जो कुछ सेवा मुझसे हो सकती है, उसमें त्रुटि न होगी।

अलोपीदीन ने एक स्टांप लगा हुआ पत्र निकाला और उसे वंशीधर के सामने रखकर बोले–इस पद को स्वीकार कीजिए और अपने हस्ताक्षर कर दीजिए। मैं ब्राह्मण हूँ, जब तक यह सवाल पूरा न कीजिएगा, द्वार से न हटूँगा।

मुंशी वंशीधर ने उस कागज़ को पढ़ा तो कृतज्ञता से आँखों में आँसू भर आए। पंडित अलोपीदीन ने उनको अपनी सारी जायदाद का स्थायी मैनेजर नियत किया था। छह हज़ार वार्षिक वेतन के अतिरिक्त रोज़ाना खर्च अलग, सवारी के लिए घोड़े, रहने को बंगला, नौकर-चाकर मुफ्त। कंपित स्वर में बोले–पंडित जी, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि आपकी उदारता की प्रशंसा कर सकूँ। किंतु मैं ऐसे उच्च पद के योग्य नहीं हूँ।

अलोपीदीन हँसकर बोले–मुझे इस समय एक अयोग्य मनुष्य की ही ज़रूरत है।

वंशीधर ने गंभीर भाव से कहा–यों मैं आपका दास हूँ। आप जैसे कीर्तिवान, सज्जन पुरुष की सेवा करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है। किंतु मुझमें न विद्या है, न बुद्धि, न वह स्वभाव, जो इन त्रुटियों की पूर्ति कर देता है। ऐसे महान कार्य के लिए एक बड़े मर्मज्ञ अनुभवी मनुष्य की ज़रूरत है।

अलोपीदीन ने कलमदान से कलम निकाली और उसे वंशीधर के हाथ में देकर बोले–न मुझे विद्वता की चाह है, न अनुभव की, न मर्मज्ञता की, न कार्य कुशलता की। इन गुणों के महत्त्व का परिचय खूब पा चुका हूँ। अब सौभाग्य और सुअवसर ने मुझे वह मोती दे दिया है जिसके सामने योग्यता और विद्वता की चमक फीकी पड़ जाती है। यह कलम लीजिए, अधिक सोच-विचार न कीजिए, दस्तखत कर दीजिए। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह आपको सदैव वही नदी के किनारे वाला बेमुरौवत, उद्दंड, कठोर परंतु धर्मनिष्ठ दारोगा बनाए रखे!

वंशीधर की आँखें डबडबा आईं। हृदय के संकुचित पात्र में इतना एहसान न समा सका। एक बार फिर पंडितजी की ओर भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखा और काँपते हुए हाथ से मैनेजरी के कागज़ पर हस्ताक्षर कर दिए।

अलोपीदीन ने प्रफुल्लित होकर उन्हें गले लगा लिया।

अभ्यास

पाठ के साथ

1. कहानी का कौन-सा पात्र आपको सर्वाधिक प्रभावित करता है और क्यों?
2. 'नमक का दारोगा' कहानी में पंडित अलोपीदीन के व्यक्तित्व के कौन से दो पहलू (पक्ष) उभरकर आते हैं?
3. कहानी के लगभग सभी पात्र समाज की किसी-न-किसी सच्चाई को उजागर करते हैं। निम्नलिखित पात्रों के संदर्भ में पाठ से उस अंश को उद्धृत करते हुए बताइए कि यह समाज की किस सच्चाई को उजागर करते हैं–

   (क) वृद्ध मुंशी (ख) वकील (ग) शहर की भीड़
4. निम्न पंक्तियों को ध्यान से पढ़िए– ***नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर का मज़ार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए। ऐसा काम ढूँढ़ना जहाँ कुछ ऊपरी आय हो। मासिक वेतन तो पूर्णमासी का चाँद है जो एक दिन दिखाई देता है और घटते-घटते लुप्त हो जाता है। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है जिससे सदैव प्यास बुझती है। वेतन मनुष्य देता है, इसी से उसमें वृद्धि नहीं होती। ऊपरी आमदनी ईश्वर देता है, इसी से उसकी बरकत होती है, तुम स्वयं विद्वान हो, तुम्हें क्या समझाऊँ।***

   (क) यह किसकी उक्ति है?

   (ख) मासिक वेतन को पूर्णमासी का चाँद क्यों कहा गया है?

   (ग) क्या आप एक पिता के इस वक्तव्य से सहमत हैं?
5. 'नमक का दारोगा' कहानी के कोई दो अन्य शीर्षक बताते हुए उसके आधार को भी स्पष्ट कीजिए।

6. कहानी के अंत में अलोपीदीन के वंशीधर को मैनेजर नियुक्त करने के पीछे क्या कारण हो सकते हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए। आप इस कहानी का अंत किस प्रकार करते?

पाठ के आस-पास

1. दारोगा वंशीधर गैरकानूनी कार्यों की वजह से पंडित अलोपीदीन को गिरफ्तार करता है, लेकिन कहानी के अंत में इसी पंडित अलोपीदीन की सहृदयता पर मुग्ध होकर उसके यहाँ मैनेजर की नौकरी को तैयार हो जाता है। आपके विचार से वंशीधर का ऐसा करना उचित था? आप उसकी जगह होते तो क्या करते?
2. नमक विभाग के दारोगा पद के लिए बड़ों-बड़ों का जी ललचाता था। वर्तमान समाज में ऐसा कौन-सा पद होगा जिसे पाने के लिए लोग लालायित रहते होंगे और क्यों?
3. अपने अनुभवों के आधार पर बताइए कि जब आपके तर्कों ने आपके भ्रम को पुष्ट किया हो।
4. ***पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया।*** वृद्ध मुंशी जी द्वारा यह बात एक विशिष्ट संदर्भ में कही गई थी। अपने निजी अनुभवों के आधार पर बताइए–
   (क) जब आपको पढ़ना-लिखना व्यर्थ लगा हो।
   (ख) जब आपको पढ़ना-लिखना सार्थक लगा हो।
   (ग) 'पढ़ना-लिखना' को किस अर्थ में प्रयुक्त किया गया होगा :
   साक्षरता अथवा शिक्षा? (क्या आप इन दोनों को समान मानते हैं?)
5. ***लड़कियाँ हैं, वह घास-फूस की तरह बढ़ती चली जाती हैं।*** वाक्य समाज में लड़कियों की स्थिति की किस वास्तविकता को प्रकट करता है?
6. ***इसलिए नहीं कि अलोपीदीन ने क्यों यह कर्म किया बल्कि इसलिए कि वह कानून के पंजे में कैसे आए। ऐसा मनुष्य जिसके पास असाध्य साधन करनेवाला धन और अनन्य वाचालता हो, वह क्यों कानून के पंजे में आए। प्रत्येक मनुष्य उनसे सहानुभूति प्रकट करता था।*** अपने आस-पास अलोपीदीन जैसे व्यक्तियों को देखकर आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी? उपर्युक्त टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए लिखें।

समझाइए तो ज़रा

1. नौकरी में ओहदे की ओर ध्यान मत देना, यह तो पीर की मज़ार है। निगाह चढ़ावे और चादर पर रखनी चाहिए।
2. इस विस्तृत संसार में उनके लिए धैर्य अपना मित्र, बुद्धि अपनी पथप्रदर्शक और आत्मावलंबन ही अपना सहायक था।

3. तर्क ने भ्रम को पुष्ट किया।
4. न्याय और नीति सब लक्ष्मी के ही खिलौने हैं, इन्हें वह जैसे चाहती हैं, नचाती हैं।
5. दुनिया सोती थी, पर दुनिया की जीभ जागती थी।
6. खेद ऐसी समझ पर! पढ़ना-लिखना सब अकारथ गया।
7. धर्म ने धन को पैरों तले कुचल डाला।
8. न्याय के मैदान में धर्म और धन में युद्ध ठन गया।

भाषा की बात

1. भाषा की चित्रात्मकता, लोकोक्तियों और मुहावरों के जानदार उपयोग तथा हिंदी-उर्दू के साझा रूप एवं बोलचाल की भाषा के लिहाज़ से यह कहानी अद्‌भुत है। कहानी में से ऐसे उदाहरण छाँटकर लिखिए और यह भी बताइए कि इनके प्रयोग से किस तरह कहानी का कथ्य अधिक असरदार बना है?
2. कहानी में मासिक वेतन के लिए किन-किन विशेषणों का प्रयोग किया गया है? इसके लिए आप अपनी ओर से दो-दो विशेषण और बताइए। साथ ही विशेषणों के आधार को तर्क सहित पुष्ट कीजिए।
3. (क) बाबूजी आशीर्वाद!
   (ख) सरकारी हुक्म!
   (ग) दातागंज के!
   (घ) कानपुर!

   दी गई विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ एक निश्चित संदर्भ में निश्चित अर्थ देती हैं। संदर्भ बदलते ही अर्थ भी परिवर्तित हो जाता है। अब आप किसी अन्य संदर्भ में इन भाषिक अभिव्यक्तियों का प्रयोग करते हुए समझाइए।

चर्चा करें

इस कहानी को पढ़कर बड़ी-बड़ी डिग्रियों, न्याय और विद्वता के बारे में आपकी क्या धारणा बनती है? वर्तमान समय को ध्यान में रखते हुए इस विषय पर शिक्षकों के साथ एक परिचर्चा आयोजित करें।

शब्द-छवि

बरकंदाजी	–	बंदूक लेकर चलने वाला सिपाही, चौकीदार
सदाव्रत	–	हमेशा अन्न बाँटने का व्रत
मुख्तार	–	कलक्टरी में वकील से कम दरजे का वकील
अलौकिक	–	दिखाई न देने वाला
कातर	–	परेशान, दुखी
अमले	–	कर्मचारी मंडल, नौकर-चाकर
अरदली (ऑर्डरली)	–	किसी बड़े अफ़सर के साथ रहने वाला खास चपरासी
तजवीज़	–	राय, निर्णय
अकारथ	–	व्यर्थ
पछहिएँ	–	पश्चिमी